श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता अध्याय(3.33)



वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयं स्कंधः
॥ अथ त्रयस्त्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

मैत्रेय उवाच
एवं(न्) निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री,
सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ।
विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य,
तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥ 1॥

मैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी ! श्रीकपिल भगवान् के ये वचन सुनकर कर्दमजीकी प्रिय पत्नी माता देवहूतिके मोहका पर्दा फट गया और वे तत्त्वप्रतिपादक सांख्यशास्त्र के ज्ञानकी आधारभूमि श्रीकपिलजीको प्रणाम करके उनको स्तुति करने भगवान् लगीं।

देवहूतिरुवाच

अथाप्यजोऽन्तः(स्)सलिले शयानं(म्),

भूतेन्द्रियार्थात्ममयं(वँ) वपुस्ते ।

गुणप्रवाहं(म्) सदशेषबीजं(न्),

ददध्यौ स्वयं(यँ) यज्जठराब्जजातः ॥ 2॥

देवहूतिजीने कहा- कपिलजी ! ब्रह्माजी आपके ही नाभिकमलसे प्रकट हुए थे। उन्होंने प्रलयकालीन जलमें शयन करनेवाले आपके पञ्चभूत, इन्द्रिय, शब्दादि विषय और मनोमय विग्रहका, जो सत्त्वादि गुणोंके प्रवाहसे युक्त, सत्स्वरूप और कार्य एवं कारण दोनोंका बीज है, ध्यान ही किया था ।

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते,

गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।

सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धि-

रात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ 3॥

आप निष्क्रिय, सत्यसङ्कल्प सम्पूर्ण जीवोंके प्रभु तथा सहस्रों अंचित्य शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। अपनी शक्तिको गुणप्रवाहरूपसे ब्रह्मादि अनन्त मूर्तियोंमें विभक्त करके उनके द्वारा आप स्वयं ही विश्वकी रचना आदि करते हैं।

स त्वं(म्) भृतो मे जठरेण नाथ,

कथं(न्) नु यस्योदर एतदासीत् ।

विश्वं(यँ) युगान्ते वटपत्र एकः(श्)

शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥ 4॥

नाथ ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिनके उदरमें प्रलयकाल आनेपर यह सारा प्रपञ्च लीन हो जाता है और जो कल्पान्तमें मायामय बालकका रूप धारण कर अपने चरणका अँगूठा चूसते हुए अकेले ही वटवृक्षके पत्तेपर शयन करते हैं, उन्हीं आपको मैंने गर्भमे धारण किया ।

त्वं(न्) देहतन्त्रः(फ्) प्रशमाय पाप्मनां(न्),

निदेशभाजां(ञ्) च विभो विभूतये ।

यथावतारास्तव सूकरादय-

स्तथायमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ 5॥

विभो! आप पापियोंका दमन और अपने आज्ञाकारी भक्तोंका अभ्युदय एवं कल्याण करनेके लिये। स्वेच्छासे देह धारण किया करते हैं। अतः जिस प्रकार आपके वराह आदि अवतार हुए हैं, उसी प्रकार यह कपिलावतार भी मुमुक्षुओंको ज्ञानमार्ग दिखानेके लिये हुआ है ।

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तना-

द्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।

श्वादोऽपि सद्यः(स्) सवनाय कल्पते

कुतः(फ्) पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ 6॥

भगवन्! आपके नामोंका श्रवण या कीर्तन करनेसे तथा भूले-भटके कभी-कभी आपका वन्दन या स्मरण करनेसे ही कुत्तेका मांस खानेवाला चाण्डाल भी सोमयाजी ब्राह्मणके समान पूजनीय हो सकता है; फिर आपका दर्शन करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाय- इसमें तो कहना ही क्या है ।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्,

यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।

तेपुस्तपस्ते जुहुवुः(स्) सस्नुरार्या

ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ 7॥

अहो !वह चाण्डाल भी इसीसे सर्वश्रेष्ठ है कि उसकी जिव्हाके अग्रभागमें आपका नाम विराजमान है। जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन - सब कुछ कर लिया ।

तं(न्) त्वामहं(म्) ब्रह्म परं(म्) पुमां(म्)सं(म्),

प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि सं(वँ)विभाव्यम् ।

स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं(वँ),

वन्दे विष्णुं(ङ्) कपिलं(वँ) वेदगर्भम् ॥ 8॥

कपिलदेवजी ! आप साक्षात् परब्रह्म हैं, आप ही परम पुरुष हैं, वृत्तियोंके प्रवाहको अन्तर्मुख करके अन्तःकरणमें आपका ही चिन्तन किया जाता है। आप अपने तेजसे मायाके कार्य गुण-प्रवाहको शान्त कर देते हैं तथा आपके ही उदरमें सम्पूर्ण वेदतत्त्व निहित है। ऐसे साक्षात् विष्णुस्वरूप आपको मैं प्रणाम करती हूँ।

मैत्रेय उवाच

ईडितो भगवानेवं(ङ्), कपिलाख्यः(फ्) परः(फ्) पुमान् ।

वाचा विक्लवयेत्याह, मातरं(म्) मातृवत्सलः ॥ 9॥

मैत्रेयजी कहते हैं—माताके इस प्रकार स्तुति करनेपर मातृवत्सल परमपुरुष भगवान् कपिलदेवजीने उनसे गम्भीर वाणीमें कहा ।

कपिल उवाच

मार्गेणानेन मातस्ते, सुसेव्येनोदितेन मे ।

आस्थितेन परां(ङ्) काष्ठा-मचिरादवरोत्स्यसि ॥ 10॥

कपिलदेवजीने कहा-माताजी! मैंने तुम्हें जो यह सुगम मार्ग बताया है, इसका अवलम्बन करनेसे तुम शीघ्र ही परमपद प्राप्त कर लोगी ।

श्रद्धत्स्वैतन्मतं(म्) मह्यं(ञ), जुष्टं(यँ) यद्ब्रह्मवादिभिः ।
येन मामभवं(यँ) याया, मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ 11॥

तुम मेरे इस मतमें विश्वास करो, ब्रह्मवादी लोगोंने इसका सेवन किया। है; इसके द्वारा तुम मेरे जन्म-मरणरहित स्वरूपको प्राप्त कर लोगी। जो लोग मेरे इस मतको नहीं जानते, वे जन्म-मृत्युके चक्रमे पड़ते हैं ।

मैत्रेय उवाच

इति प्रदर्श्य भगवान्, सतीं(न्) तामात्मनो गतिम् ।
स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या, कपिलोऽनुमतो ययौ ॥ 12॥

मैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार अपने श्रेष्ठ आत्मज्ञानका उपदेश कर श्रीकपिलदेवजी अपनी ब्रह्मवादिनी जननीकी अनुमति लेकर वहाँ चले गये ।

सा चापि तनयोक्तेन, योगादेशेन योगयुक् ।
तस्मिन्नाश्रम आपीडे, सरस्वत्याः(स्) समाहिता ॥ 13॥

तब देवहूतिजी भी सरस्वतीके मुकुटसदृश अपने आश्रम में अपने पुत्रके उपदेश किये हुए योगसाधनके द्वारा योगाभ्यास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयीं ।

अभीक्ष्णावगाहकपिशान्, जटिलान् कुटिलालकान् ।
आत्मानं(ञ्) चोग्रतपसा, बिभ्रती चीरिणं(ङ्) कृशम् ॥ 14॥

त्रिकाल स्नान करनेसे उनकी घुँघराली अल्के भूरी-भूरी जटाओंमें परिणत हो गयीं तथा चीर वस्त्रोंसे ढका हुआ शरीर उग्र तपस्याके कारण दुर्बल हो गया ।

प्रजापतेः(ख्) कर्दमस्य, तपोयोगविजृम्भितम् ।
स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं(म्), प्रार्थ्यं(वँ) वैमानिकैरपि ॥ 15॥

उन्होंने प्रजापति कर्दमके तप और योगबल से प्राप्त अनुपम गार्हस्थ्यमुखको, जिसके लिये देवता भी तरसते थे, त्याग दिया ।

पयः(फ्) फेननिभाः(श्) शय्या, दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
आसनानि च हैमानि, सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ 16॥

स्वच्छस्फटिककुड्येषु, महामारकतेषु च ।
रत्नप्रदीपा आभान्ति, ललनारत्नसं(यँ)युताः ॥ 17॥

गृहोद्यानं(ङ्) कुसुमितै, रम्यं(म्) बह्वमरद्रुमैः ।
कूजद्विहङ्गमिथुनं(ङ्), गायन् मत्तमधुव्रतम् ॥ 18॥

यत्र प्रविष्टमात्मानं(वँ), विबुधानुचरा जगुः ।
वाप्यामुत्पलगन्धिन्यां(ङ्), कर्दमेनोपलालितम् ॥ 19॥

हित्वा तदीप्सिततम-मप्याखण्डलयोषिताम् ।
किञ्चिच्चकार वदनं(म्), पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ 20॥

जिसमें दुग्धफेनके समान स्वच्छ और सुकोमल शय्यासे युक्त हाथी-दांत के पलंग, सुवर्णके पात्र, सोनेके सिंहासन और उनपर कोमल-कोमल गद्दे बिछे हुए थे तथा जिसकीस्वच्छ स्फटिकमणि और महामरकतमणिकी भीतों में रत्नोंकी बनी हुई रमणी-मूर्तियोंके सहित मणिमय दीपक जगमगा रहे थे, जो फूलोंसे लदे हुए अनेकों दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित था, जिसमें अनेक प्रकारके पक्षियोंका कलरव और मतवाले भौरोंका गुंजार होता रहता था, जहाँकी कमलगन्धसे सुवासित बावलियोंमें कर्दमजीके साथ उनका लाड़-प्यार पाकर क्रीडाके लिये प्रवेश करनेपर उसका (देवहूतिका) गन्धर्वगण गुणगान किया करते थे और जिसे पानेके लिये इन्द्राणियाँ भी लालायित रहती थीं—उस गृहोद्यानकी भी ममता उन्होंने त्याग दी। किन्तु पुत्रवियोगसे व्याकुल होनेके कारण अवश्य उनका मुख कुछ उदास हो गया ।

वनं(म्) प्रव्रजिते पत्या-वपत्यविरहातुरा ।
ज्ञाततत्त्वाप्यभूत्तेषे, वत्से गौरिव वत्सला ॥ 21॥

पतिके वनगमनके अनन्तर पुत्रका भी वियोग हो जानेसे वे आत्मज्ञानसम्पन्न होकर भी ऐसी व्याकुल हो गयीं, जैसे बछड़ेके बिछुड़ जानेसे उसे प्यार करनेवाली गौ ।

तमेव ध्यायती देव-मपत्यं(ङ्) कपिलं(म्) हरिम् ।
बभूवाचिरतो वत्स, निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥ 22॥

वत्स विदुर ! अपने पुत्र कपिलदेवरूप भगवान् हरिका ही चिन्तन करते-करते वे कुछ ही दिनों में ऐसे ऐश्वर्यसम्पन्न घरसे भी उपरत हो गयीं ।

ध्यायती भगवद्रूपं(यँ), यदाह ध्यानगोचरम् ।
सुतः(फ्) प्रसन्नवदनं(म्), समस्तव्यस्तचिन्तया ॥ 23॥

फिर वे, कपिलदेवजीने भगवान् के जिस ध्यान करनेयोग्य प्रसन्नवदनारविन्दयुक्त स्वरूपका वर्णन किया था, उसके एक-एक अवयवका तथा उस समग्र रूपका भी चिन्तन करती हुई ध्यानमें तत्पर हो गयीं ।

भक्तिप्रवाहयोगेन, वैराग्येण बलीयसा ।
युक्तानुष्ठानजातेन, ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥ 24॥

विशुद्धेन तदाऽऽत्मान- मात्मना विश्वतोमुखम् ।

स्वानुभूत्या तिरोभूत-मायागुणविशेषणम् ॥ 25॥

भगवद्भक्तिके प्रवाह, प्रबल वैराग्य और यथोचित्त कर्मानुष्ठानसे उत्पन्न हुए ब्रह्म साक्षात्कार करानेवाले ज्ञानद्वारा चित्त शुद्ध हो जानेपर वे उस सर्वव्यापक आत्माके ध्यानमें मग्न हो गयीं, जो अपने स्वरूपके प्रकाशसे मायाजनित आवरणको दूर कर देता है ।

ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्-भगवत्यात्मसं(म्)श्रये ।

निवृत्तजीवापत्तित्वात्- क्षीणक्लेशाप्तनिर्वृतिः ॥ 26॥

इस प्रकार जीवके अधिष्ठानभूत परब्रहा श्रीभगवान्में ही बुद्धिकी स्थिति हो जानेसे उनका जीवभाव निवृत्त हो गया और वे समस्त क्लेशोंसे मुक्त होकर परमानन्दमें निमग्न हो गयीं ।

नित्यारूढसमाधित्वात्- परावृत्तगुणभ्रमा ।

न ससार तदाऽऽत्मानं(म्), स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥ 27॥

अब निरन्तर समाधिस्थ रहनेके कारण उनकी विषयोंके सत्यत्वकी भ्रान्ति मिट गयी और उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि न रही—जैसे जागे हुए पुरुषको अपने स्वप्नमें देखे हुए शरीरकी नहीं रहती ।

तद्देहः(फ्) परतः(फ्) पोषोऽप्- यकृशश्चाध्यसम्भवात् ।

बभौ मलैरवच्छन्नः(स्), सधूम इव पावकः ॥ 28॥

स्वाङ्गं(न्) तपोयोगमयं(म्), मुक्तकेशं(ङ्) गताम्बरम् ।

दैवगुप्तं(न्) न बुबुधे, वासुदेवप्रविष्टधीः ॥ 29॥

उनके शरीरका पोषण भी दूसरोंके द्वारा ही होता था। किन्तु किसी प्रकारका मानसिक क्लेश न होनेके कारण वह दुर्बल नहीं हुआ। उसका तेज और भी निखर गया और वह मैलके कारण धूमयुक्त,अग्निके समान सुशोभित होने लगा। उनके बाल विथुर गये थे और वस्त्र भी गिर गया था; तथापि निरन्तर श्रीभगवान में ही चित्त लगा रहनेके कारण उन्हें अपने तपोयोगमय शरीरकी कुछ भी सुधि नहीं थी, केवल प्रारब्ध ही उसकी रक्षा करता था।

एवं(म्) सा कपिलोक्तेन, मार्गेणाचिरतः(फ्) परम् ।

आत्मानं(म्) ब्रह्मनिर्वाणं(म्), भगवन्तमवाप ह ॥ 30॥

विदुरजी इस प्रकार देवहूतिजीने कपिलदेवजीके बताये हुए मार्गद्वारा थोड़े ही समयमें नित्यमुक्त परमात्मस्वरूप श्रीभगवान्को प्राप्त कर लिया ।

तद्वीरासीत्पुण्यतमं(ङ्), क्षेत्रं(न्) त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

नाम्ना सिद्धपदं(यँ) यत्र, सा सं(म्)सिद्धिमुपेयुषी ॥ 31॥

वीरवर! जिस स्थानपर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह परम पवित्र क्षेत्र त्रिलोकीमें 'सिद्धपद' नामसे विख्यात हुआ।

तस्यास्तद्योगविधुत-मार्त्यं(म्) मर्त्यमभूत्सरित् ।

स्रोतसां(म्) प्रवरा सौम्य, सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥ 32॥

साधुस्वभाव विदुरजी ! योगसाधनके द्वारा उनके शरीरके सारे दैहिक मल दूर हो गये थे। वह एक नदीके रूपमें परिणत हो गया, जो सिद्धगणसे सेवित और सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली है ।

कपिलोऽपि महायोगी, भगवान् पितुराश्रमात् ।

मातरं(म्) समनुज्ञाप्य, प्रागुदीचीं(न्) दिशं(यँ) ययौ ॥ 33॥

महायोगी भगवान् कपिलजी भी माताकी आज्ञा ले पिताके आश्रम से ईशानकोणकी ओर चले गये ।

सिद्धचारणगन्धर्वैर्- मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।

स्तूयमानः(स्) समुद्रेण, दत्तार्हणनिकेतनः ॥ 34॥

आस्ते योगं(म्) समास्थाय, साङ्ख्याचार्यैरभिष्टुतः ।

त्रयाणामपि लोकाना- मुपशान्त्यै समाहितः ॥ 35॥

वहाँ स्वयं समुद्रने उनका पूजन करके उन्हें स्थान दिया। वे तीनों लोकोको शान्ति प्रदान करनेके लिये योगमार्गका अवलम्बन कर समाधिमें स्थित हो गये हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि और अप्सरागण उनकी स्तुति करते हैं तथा सांख्याचार्यगण भी उनका सब प्रकार स्तवन करते रहते हैं ।

एतन्निगदितं(न्) तात, यत्पृष्टोऽहं(न्) तवानघ ।

कपिलस्य च सं(वँ)वादो, देवहूत्याश्च पावनः ॥ 36॥

निष्पाप विदुरजी तुम्हारे पूछनेसे मैने तुम्हें यह भगवान् कपिल और देवहूतिका परम पवित्र संवाद सुनाया।

य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते,

कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ।

भगवति कृतधीः(स्) सुपर्णकेता-

वुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥ 37॥

यह कपिलदेवजीका मत अध्यात्मयोगका गूढ़ रहस्य है। जो पुरुष इसका श्रवण या वर्णन करता है, वह भगवान् गरुडध्वजको भक्तिसे युक्त होकर शीघ्र ही श्रीहरिके चरणारविन्दों को प्राप्त करता है ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासक्यामष्टादशसाहस्र्यां(म्)

पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्) तृतीयस्कन्धे

कापिलेयोपाख्यानेत्रयस्त्रिं(म्)शत्तमोऽध्यायः ॥